

[पाण्डुलिपि मूल प्रति लिंक](#)

ए नागराज शर्मा

जीवन विद्या गोष्ठी

सम्बोधन,

मेधावी बंधुओं आप-हम जीवन-विद्या मूलक सार्वभौम मानव व्यवहार शिक्षा सूत्र को व्याख्यापूर्वक अवधारणा के रूप में पहचानने तथा उसे आचरणपूर्वक प्रबोधन कार्य में प्रमाणित करने के उद्देश्य से यहाँ एकत्रित हुये हैं। हितकारिणी सभा की सौजन्यता और दिव्य पथ संस्थान की प्रतिबद्धता के योगफल में यह आयोजन व अवसर समीचीन हुआ है।

अस्तु मैं उभय संस्था की सतत् सार्थकता की कामना करता हूँ।

जीवन-विद्या और परिचय

जीवन विद्या का तात्पर्य जीवन के तात्त्विक व व्यवहार कार्य रूप के प्रति निर्भ्रम होने से है, इसी क्रम में मनुष्येतर प्रकृति, मनुष्य, जीवन तथा जीवन जागृति के अनन्तर संबंध शिक्षा, शिक्षक व शिक्षार्थी में प्रयोग व्यवहार व अनुभवपूर्वक प्रमाणित होना ही जीवन-विद्या के परिचय का तात्पर्य है।

मनुष्येतर प्रकृति तीन अवस्थाओं में स्पष्ट है:-

1. पदार्थावस्था; मृद, पाषाण, मणि, धातु एवं उसके परिणामानुषंगीय संपूर्ण विकास
2. प्राणावस्था; अम्ल, वनस्पति, एवं उसके बीजानुषंगीय संपूर्ण रचना व विरचनात्मक विकार
3. जीवावस्था; मनुष्येतर जीव, उसके वंशानुषंगीय कार्यकलाप

4. ज्ञानावस्था; मानव जागृति क्रम में संस्कारानुषंगीय, परावर्तन व प्रत्यावर्तनात्मक व्यवहार, व्यवसाय, आचरण, विचार, समाधान एवं प्रमाण
5. जीवन; मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि व आत्मबल की अविभाज्य स्थिति आशा, विचार, इच्छा, संकल्प व अनुभूति जैसी शक्ति की अविभाज्य वर्तमान क्रिया
6. संचेतना; अर्थात् अस्तित्व, रासायनिक व भौतिक रचना व विरचनाओं, अस्तित्व में परमाणु में विकास, जीवन, संबंधों की पहचान व मूल्यों के निर्वाह के रूप में।

अस्तित्व ही संपूर्ण भाव

अस्तित्व में संपूर्ण जीव, जगत, जीवन को जीवन जागृतिपूर्वक दृष्टा पद के महिमा सहित जानने व मानने का सौभाग्यमयी अधिकार व अवसर, अस्तित्व में विकास सहज रूप में, प्रत्येक मनुष्य को समान रूप में प्राप्त है। यही इस परिचय का आधार है।

“संपूर्ण संबंध मानव संबंध व नैसर्गिक संबंध के रूप में वर्तमान व स्पष्ट है”

जीवन विद्या - संचेतना का वैभव = पहचान + निर्वाह + जानना + मानना

अवधारणा - संचेतना + परिष्कृति + परिष्कृतिपूर्णता

- गुणात्मक विकास = मानवत्व की अभिव्यक्ति+संप्रेषणा+ प्रकाशन = जीवन जागृति = दृष्टा पद

1. जीवन ही संचेतना व जीवन्त रूप में प्रत्येक मनुष्य में समान रूप में सार्वभौम शुभाकांक्षा सहित कार्यरत है।
2. जीवन ही दृष्टा व कर्ता है यह अधिकार प्रत्येक मनुष्य में समान है।

3. प्रत्येक मनुष्य जड़ (शरीर) चैतन्य (जीवन) प्रकृति का संयुक्त साकार रूप में वर्तमान है।
4. मनुष्य ही, जीवन जागृति व परिष्कृतिपूर्ण संचेतनापूर्वक सहअस्तित्व में, दृष्टा पद में होता है।
5. दृष्टा पद अभिलाषा प्रत्येक मनुष्य में समान है।
6. दृष्टा पद में प्रमाण, कर्त्ता पद में प्रामाणिक - प्रत्येक अध्यापक का होना, अपरिहार्य है। दृष्टा व कर्त्ता अविभाज्य वर्तमान हैं।
7. दृष्टा पद में ही प्रत्येक मनुष्य समाधानित व प्रामाणिकतापूर्ण होता है।
8. प्रत्येक विद्यार्थी में न्याय प्रदायी क्षमता, सही कार्य करने की योग्यता, यथार्थता वास्तविकता व सत्यता को स्वीकार व प्रकाशित करने की पात्रता को स्थापित करना ही जीवन विद्या मूलक प्रामाणिक शिक्षा का तात्पर्य है।
9. मानवीय आचरण (स्वधन, स्वनारी/स्वपुरुष एवं दयापूर्ण कार्य-व्यवहार) ही मानवत्व और व्यवस्था है। मानव व्यवहार की (संबंधों की पहचान व मूल्यों का निर्वाह) समग्र व्यवस्था में भागीदारी है।
10. मानवीय आचरण व व्यवहार ही शिक्षा व शिक्षा में जीने का तात्पर्य तथा यही जीने की कला भी है।
11. व्यवस्था ही सार्वभौम आदर्श (धर्म) राज्य तथा मानव परम्परा का वैभव है।
12. व्यवस्था ही वर्तमान में विश्वास है।
13. व्यवस्था ही वर्तमान और प्रमाण है, क्योंकि प्रत्येक अपने त्व सहित व्यवस्था है।
14. प्रत्येक मनुष्य मानवत्व सहित व्यवस्था, सह अस्तित्व सूत्र व व्याख्या है।
15. सह-अस्तित्व सूत्र व व्याख्या ही शिक्षक, शिक्षा व शिक्षार्थी का वस्तु है।
16. जीवन में गुणात्मक विकास ही होता है न कि मात्रात्मक विकास।
17. शिक्षा का प्रयोजन व्यवहार में सामाजिक व व्यवसाय में स्वावलम्बी होना है।
18. जीवन-विद्या ही व्यवहार व आचरण में सामाजिक तथा संबंधों में प्रामाणिक होने की पद्धति प्रणाली व नीति है।

मानव संबंध परिचय

प्रत्येक मनुष्य में जानना पहचानना मानना व निर्वाह करना जीवन सहज प्रक्रिया है। इसी क्रम में मनुष्य मानव संबंधों को पहचानने का प्रयास करता आया जैसे:-, नस्ल, रंग, देश, भाषा व उत्पादनों के आधार पर जाति व संबंधों; रहस्यात्मक, प्रतीकात्मक, लक्षणात्मक तथा वंशात्मक धर्म-मत-पंथ-सम्प्रदाय के आधार पर धर्म संबंधों, पद वस्तु व वैभव के आधार पर वर्ग व समुदाय संबंधों, को पहचानने का इतिहास स्थापित किया।

उक्त सभी प्रयास अथवा किसी एक प्रयास का शुभ प्रतिष्ठा के रूप में प्रमाणित होना संभव नहीं हुआ। यही मानव का परम्परागत निग्रह बिन्दु एवं कारक तत्व रहा। प्रत्येक मनुष्य तथा समुदाय समाधान, समृद्धि, अभय एवं सह-अस्तित्व रूपी सार्वभौम शुभ चाहता है। सह-अस्तित्व ही प्रधानतः मानव संबंधों व मूल्यों का सूत्र व व्याख्या है। ऐसे मानव संबंधों का नामकरण करने की स्थिति निम्न प्रकार से सार्वभौम होना स्पष्ट है, यथा:-

1. माता को पोषण के रूप में,
2. पिता को संरक्षण के रूप में,
3. पुत्र-पुत्री को अभ्युदय अर्थात् सर्वतोमुखी विकास के रूप में,
4. भाई-बहन को व्यवस्था के रूप में,
5. मित्र मित्र को गुणात्मक विकास के रूप में, अथवा बौद्धिक समाधान व भौतिक समृद्धि के रूप में,
6. गुरु-शिष्य को जिज्ञासु व निष्ठा के रूप में,
7. शिष्य-गुरु को प्रमाण व प्रामाणिकता के रूप में,
8. पति-पत्नी को यतीत्व व सतीत्व के रूप में जानना व मानना पहचानना व निर्वाह करना ही सार्वभौमता का तात्पर्य है।

आचरण प्रधानतः संबंधों में निहित मूल्यों की पहचान और निर्वाह सूत्र व व्याख्या है। इसे शिक्षा सुलभ तथा आचरण सहज करना इस परिचय की गति और महिमा है।

मानव संबंधों में निहित स्थापित मूल्य व शिष्ट मूल्य आचरण व्यवहार में प्रमाणित होता है, यथा:-

	स्थापित मूल्य	शिष्ट मूल्य
1	कृतज्ञता- जीवन जागृति व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलम्बन क्रम में प्राप्त सहायता उपकार की स्वीकृति उसकी निरंतरता के रूप में	सौम्यता- स्वेच्छा से स्वयं का नियंत्रण के रूप में
2	गौरव- विकसित क्षमता व व्यक्ति की पहचान, उसका स्वीकार निरंतरता के रूप में	सरलता- समस्या व तनाव रहित अंगहार के रूप में
3	श्रद्धा – श्रेय (प्रामाणिकता) सर्वतोमुखी समाधान की ओर गति निरंतरता के रूप में	पूज्यता- गुणात्मक विकास के लिए सक्रियता के रूप में
4	प्रेम- पूर्णता में रति, उसकी निरंतरता के रूप में	अनन्यता- जागृतिपूर्ण पहचान निर्वाह के रूप में
5	विश्वास- संबंधों में निहित मूल्यों के निर्वाह की निरंतरता रूप में	सौजन्यता- सहकारिता, सहयोगिता व सहभागिता के रूप में
6	वात्सल्य- अभ्युदय के अर्थ में पोषण व संरक्षण की निरंतरता के रूप में	सहजता- स्पष्टता वास्तविकता यथार्थता व सत्यता के रूप में
7	ममता-	उदारता-

	स्वयं की प्रतिरूपता की स्वीकृति की निरंतरता के रूप में	कम उपयोग, अधिक अर्पण समर्पण व सेवा के रूप में
8	सम्मान- व्यक्तित्व प्रतिभा की श्रेष्ठता की स्वीकृति की निरंतरता के रूप में	अरहस्यता- सही मूल्यांकन, प्रामाणिकतापूर्ण चरित्र नैतिकता के रूप में
9	स्नेह- संतुष्टि में से के लिए स्वयंस्फूर्त मिलन के निरंतरता के रूप में	निष्ठा- मानवतावादी विचार व व्यवहार की निरंतरता के रूप में

जीवन विद्या स्वरूप - संचेतना + उसका कार्य = जानना मानना + पहचानना निर्वाह करना

संचेतना का तात्त्विक स्वरूप - गठनपूर्ण परमाणु = चैतन्य इकाई

'जीवन ही चैतन्य इकाई और उसकी महिमा ही संचेतना है'

संचेतना का कार्य ही मनुष्य की स्थिति व गति में अविभाज्य रूप में वर्तमान है। जीवन ही जीवन का दृष्टा होना प्रमाणित है। इसे अध्ययन सुलभ करना इस जीवन विद्या गोष्ठी का आशय है।

जीवन व जीवन को पहचानने की प्रक्रिया व प्रणाली दो प्रकार से स्पष्ट है:-

1. जीवन में होने वाली पाँचों अक्षय बल (मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि, व आत्मा) व पाँचों अक्षय शक्तियों (आशा, विचार, इच्छा, संकल्प व अनुभव) के अविभाज्य वर्तमान में, अन्तर संबंध प्रणाली है।
2. परस्पर जीवन के कार्य कलापों, उसके फल, परिणामों और जीवन सहज सार्वभौम शुभ लक्ष्य (समाधान समृद्धि अभय सहअस्तित्व) सर्वसुलभ प्रक्रिया के आधार पर प्रमाणित होता है।

उक्त दोनों विधि से सम्पन्न अध्ययन के मूल में दृष्टा व कर्त्ता पद में जीवन ही वस्तु है, क्योंकि संपूर्ण दृश्य दृष्टा के बीच दृष्टि की क्रियाशीलता का होना पाया जाता है। जैसे :-

प्रथम

1. अस्तित्व - दृश्य; मनुष्य- दृष्टा; सत्यपूर्ण दृष्टि की क्रियाशीलता, फलस्वरूप संपूर्ण भाव-सूत्र व्याख्या जो स्वयं अनुभव और प्रामाणिकता के रूप में प्रमाणित होता है।
2. सह अस्तित्व - दृश्य, मनुष्य-दृष्टा, धर्मपूर्ण दृष्टि की क्रियाशीलता, फलस्वरूप सर्वतोमुखी समाधान-सूत्र, व्याख्या, बोध व अवधारणाये प्रमाणित होती हैं।
 - सहअस्तित्व में परमाणु में विकास-दृश्य, मनुष्य-दृष्टा, न्यायपूर्ण दृष्टि की क्रियाशीलता, पूरकता उदात्तिकरण-सूत्र व व्याख्या फलस्वरूप जीव और जगत रासायनिक, भौतिक क्रियाकलाप के रूप में प्रमाणित होता है।
 - सहअस्तित्व में अक्षय बल व अक्षय शक्ति व जागृति सम्पन्न मनुष्य क्रमशः दृश्य दृष्टा और दर्शक, फलस्वरूप गठनपूर्णता, क्रियापूर्णता व आचरणपूर्णता और मुक्त जीवन सूत्र व्याख्या है।

द्वितीय-

1. मन दृश्य, वृत्ति दृष्टा, तुलनात्मक दृष्टि की क्रियाशीलता फलस्वरूप पूरकता सूत्र व व्याख्या प्रमाणित होता है।
2. वृत्ति दृश्य, चित्त दृष्टा, न्यायपूर्ण दृष्टि की क्रियाशीलता, फलस्वरूप उदात्तिकरण अर्थात् अमानवीयता से मानवीयता, मानवीयता से देव और दिव्य मानवीयता क्रम सूत्र व्याख्या।
3. चित्त दृश्य, बुद्धि दृष्टा, धर्मपूर्ण दृष्टि की क्रियाशीलता फलस्वरूप यथार्थता वास्तविकता व सत्यता का बोध संबंधों व मूल्यों का बोध सूत्र व व्याख्या।
4. बुद्धि दृश्य, आत्मा दृष्टा सत्यपूर्ण दृष्टि की क्रियाशीलता, फलस्वरूप प्रामाणिकता जीवन जागृति सूत्र व व्याख्या प्रमाणित होता है यह सब जीवन का क्रियाकलाप व उसकी महिमा है।

अनुभव बल प्रामाणिकता के रूप में, विचार शैली सर्वतोमुखी समाधान के रूप में, जीने की कला न्याय व नियमपूर्ण पद्धति, प्रणाली, नीति सहित स्वतंत्रता व स्वराज्य के रूप में चरितार्थ प्रमाणित व वर्तमानित होना ही जीवन विद्या का स्वरूप है।

जीवन का कार्य - परावर्तन + प्रत्यावर्तन का अविभाज्य वर्तमान है

मनुष्य के परीक्षण निरीक्षण व सर्वेक्षण से प्रमाणित होता है कि जीवन महिमा अर्थात् अक्षय बल व अक्षय शक्तियों का अविभाज्य वर्तमान है। यह प्रत्येक मनुष्य में समान होना पाया जाता है। प्रधानतः जीवन की पांचों शक्तियों का परावर्तन व प्रत्यावर्तन ही कार्य रूप प्रमाणित है।

प्रत्येक जीवन अनुस्यूत क्रिया है। जीवन में मनन विचार इच्छा बोध एवं अनुभव अनिवार्य एवं अविभाज्य क्रियायें हैं।

मन- मनन क्रिया

मनन क्रिया मान्यताओं पर आधारित जीवन गति है। मनन गम्य मान्यतायें 'चयन' एवं 'आस्वादन' के रूप में गण्य होती हैं। चयन क्रियायें अधिकांशतः रुचिमूलक होती हैं। रुचियाँ सर्वाधिक इन्द्रिय सन्निकर्षपूर्वक ही प्रमाणित हो पाती हैं। इन्द्रिय सन्निकर्ष में प्रधानतः ज्ञानेन्द्रियों के योग-संयोग वियोग में होने वाली प्रभाव व स्वीकृतियाँ हैं। जैसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंधेन्द्रियों के अनुकूल अर्थात् अच्छा लगने वाली योग, संयोग, वियोगात्मक मान्यतायें चयन व आस्वादन के रूप में व्यक्त, संप्रेषित व प्रकाशित होती है। इस प्रकार मनन की प्रायोज्यता और प्रवर्तन स्पष्ट है। शरीर को जीवन समझने पर्यन्त जीवन की संपूर्ण शक्तियाँ इन्द्रिय सन्निकर्ष के प्रयोजन के अर्थ में कार्यरत होना पायी जाती हैं। यही भ्रम का मूल कारण है। भ्रम का तात्पर्य अस्तित्व में प्रत्येक भाव के अपने में नियति सहज होने के कारण उसे उससे अधिक या कम मूल्यांकन अथवा मूल्यांकन न करने से है। निर्भ्रम का तात्पर्य जो जैसा है उसे उसी प्रकार मूल्यांकन करने से है जिसे जीवन जागृतिपूर्वक ही कर पाता है।

इस प्रकार मनन क्रिया में भ्रम और निर्भ्रम का स्पष्ट स्वरूप अभिहित (समझ) होता है। अतः 'चयन एवं आस्वादन' क्रियाओं के इन्द्रिय सन्निकर्ष सीमावर्ती होने से जीवन भ्रमित होने की बात भी स्पष्ट हुई। निर्भ्रम मनन क्रिया का तात्पर्य मूल्य व लक्ष्य मूलक विधि से जीवन तृप्ति यथा - प्रामाणिकता समाधान सहअस्तित्व एवं अभय मूलक और कारी चयन और आस्वादन क्रिया सम्पादित होने से है।

वृत्ति - विचार क्रिया

विचार क्रिया विश्लेषण एवं तुलनों पर आधारित जीवन गति है। विचार सहित ही मनुष्य शरीर में जीवन्तता स्पष्ट हो पाती है। अधिकांशतः विश्लेषण की संपूर्ण वस्तु भौतिक एवं रासायनिक स्वरूप तक ही सीमित रहती है एवं गुणों का विश्लेषण न्यूनतम ही होता है।

प्रत्येक इकाई अपनी संपूर्णता में रूप गुण स्वभाव एवं धर्म का अविभाज्य वर्तमान होती है। अतः इसका यथार्थ विश्लेषण इसकी संपूर्णता के अर्थात् चारों आयामों के विश्लेषण से ही संभावित है। इस तरह केवल रूप एवं गुण के आधार पर किसी इकाई की संपूर्णता विश्लेषित नहीं होती फलतः जागृति प्रमाणित नहीं होती। जीवन के जागृति क्रम में विश्लेषण कार्य एक सोपान है। विश्लेषणों के आधार पर प्राप्त निष्कर्षों का 'तुलन', जीवन सहज क्रिया है। इसी सत्यतावश प्रत्येक मनुष्य प्रियाप्रिय, हिताहित, लाभालाभ, न्यायान्याय, धर्माधर्म सत्यासत्यात्मक तुलन क्रिया को व्यक्त करता है। यह क्रम से वरीय होते हैं। यही विकास की प्रधान कसौटी है। इस कसौटी में जब क्रम से न्यायाय, धर्माधर्म एवं सत्यासत्य का प्रभेद स्वत्व के रूप में उजागर हो जाता है तभी इन मुद्दों में जागृति का पद पाता है। इस प्रकार प्रधानतः न्याय धर्म एवं सत्य को जानने, मानने व उसके गति क्रम को पहचानने व निर्वाह करने का कार्यकलाप जागृति का धोतक है। अस्तु तुलनात्मक विचार क्रम में जागृति क्रम प्रशस्त है।

चित्त - इच्छा क्रिया

इच्छा क्रिया चिंतन व चित्रण पर आधारित जीवन गति है एवं चित्त में संपादित होती है। संपूर्ण विचारों का कार्यरूप विवेचना (अर्थात् विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक) का संपादन करना ही चित्त की

चित्रण क्रिया है। जिससे प्रवर्तन का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। प्रशस्त होने का तात्पर्य प्रकाशन से है। चित्रण क्रिया अधिकतम प्रियाप्रिय, हिताहित व लाभालाभात्मक सीमावर्ती होने की स्थिति में पुनः इन्द्रिय सन्निकर्ष अवधि में ही सर्वाधिक विनियोजित हो पाता है। इससे वरीय न्याय, धर्म एवं सत्यात्मक विचारों को चित्रित करने की स्थिति में मनुष्य जीवन सहज ही व्यावहारिक हो जाता है। व्यावहारिक होने का तात्पर्य मानवत्वपूर्ण आचरण सहित समाज न्याय का पात्र और समाज न्याय प्रदान करने योग्य योग्यता सम्पन्नता से है। यही जागृति और समाधान का तात्पर्य है। इस प्रकार विविध चित्रण क्रिया से जागृत एवं अजागृत अथवा अर्धजागृत मनुष्य स्पष्ट हो जाता है। चिंतन क्रिया जीवन में विवेचनात्मक प्रक्रिया है। विवेचना स्वयं प्रयोजन व उसकी क्रमबद्धता को पहचानने व निर्वाह करने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया शरीर यात्रा और जीवन तृप्ति के संतुलन अथवा संतुलित बिन्दु को पहचानने के अर्थ में नित्य क्रियाशील है। जीवन का अर्थ व्यवहार में अभयता, समाधान, समृद्धि एवं सहअस्तित्व ही है। यह चिंतन में निष्कर्षात्मक तथ्य रूप होने की अभिव्यक्तियाँ हैं। इस प्रकार चिंतन का प्रयोजन प्रत्येक व्यक्ति को स्पष्ट हो जाता है।

बुद्धि - बोध क्रिया

बोध क्रिया “अवधारणा” अथवा संस्कार व संकल्प पर आधारित जीवन गति है एवं दो प्रकार से होती है। यथा ‘अवधारणात्मक’ तथा ‘संकल्पात्मक’, अवधारणात्मक मुख्यतः स्वभाव एवं धर्म से सम्बद्ध है। संस्कार संबंधों व मूल्यों को पहचानने व निर्वाह करने के रूप में है। संपूर्ण इकाईयाँ चार अवस्थाओं में गण्य है। प्रथम - पदार्थावस्था जो मृदु, पाषाण, मणि, धातु व उसके विकार के रूप में वर्तमान है। द्वितीय - प्राणावस्था जो वनस्पति और उसके बीजानुषंगीय परम्परा एवं उसके विकारों के रूप में विद्यमान है। तृतीयावस्था - मनुष्येतर जीव व उसके वंशानुषंगीय परम्परापूर्वक आहार विहार, विन्यास के रूप में विद्यमान हैं। चतुर्थ - ज्ञानावस्था मानव एवं उसकी संस्कारानुषंगीय परम्परापूर्वक आहार विहार व्यवस्था आचरण अभ्यास अनुसंधान एवं शिक्षा के रूप में अभिव्यक्त एवं प्रकाशित होने के क्रम में पशु मानव, राक्षस मानव, मानव, देव मानव तथा दिव्य मानव की कोटि में गण्य है। पशु मानव एवं राक्षस मानव असामाजिक, मानव सामाजिक तथा देव मानव एवं दिव्य मानव सामाजिकता

के प्रेरणा स्रोत होते हैं। यह सब विकास क्रम में जीवन जागृति के द्योतक तथा अवधारणाओं के आधार पर होने वाले प्रवर्तन हैं। ऐसे प्रवर्तन तीन स्वरूप में गण्य हैं; रुचिमूलक मूल्यमूलक एवं लक्ष्यमूलक। रुचिमूलक प्रवर्तन में मनुष्य पशु मानव तथा राक्षस मानव के अर्थ को प्रकाशित करता है।

मूल्य मूलक प्रवर्तनरत मनुष्य मानवीयता को व्यक्त संप्रेषित व प्रकाशित करता है जो स्वयं में व्यवस्था है तथा संपूर्णता के साथ व्यवस्था की भागीदारी में वैभवित होता है। लक्ष्यमूलक प्रणाली में प्रवर्तनशील मनुष्य जीवन जागृति के अर्थ में सार्थक अभिव्यक्त करता है एवं देव मानव व दिव्य मानव की कोटि में ख्यात होता है। साथ ही मानवीयता से देवमानवीयता की ओर दिशा एवं गति का प्रेरक तथा कारक भी होता है।

इस प्रकार अवधारणाओं के आधार पर वर्णित तीन प्रणालियों में मानव प्रवर्तित होता हुआ मिलता है। ऐसा प्रवर्तन मूलतः संकल्प के रूप में होता है संकल्प अवधारणाओं के प्रति बद्धता ही है। रुचिमूलक प्रणाली के प्रति संपूर्ण प्रतिबद्धतायें निष्ठा के रूप में गण्य होती है। इस प्रकार अवधारणा एवं संकल्प का प्रयोजन मनुष्य में से के लिए अध्ययन सुलभ है।

आत्मा - अनुभव क्रिया

अनुभव क्रिया 'आनंद' एवं प्रामाणिकता पर आधारित जीवन गति है। आनंद ही संतोष शांति एवं सुख के नाम से इंगित होता है। तथा प्रामाणिकता गति में व्यक्त होती है। यही प्रत्येक मनुष्य का अभीष्ट एवं वर है। प्रामाणिकता मूलक अवधारणायें (लक्ष्यमूलक) अभिव्यक्ति एवं संप्रेषणा में 'समाधान' के रूप में तथा समाधानपूर्ण संकल्प स्वयं न्यायपूर्ण व्यवहार रूप होता है। इसी तारतम्य में न्यायपूर्ण विचार, न्याय सम्मत व्यवहार एवं नियमों के रूप में तथा ऐसी मनन क्रिया शिष्टता के रूप में व्यक्त होती है। यही जीवन विद्या की महिमा और गरिमा है। जाने हुए को मानने तथा माने हुए को जानने के क्रम में अनुभव क्रिया नित्य समीचीन और प्रसवशील है क्योंकि अनुभव के अनंतर अनुभव का उदय होता ही है। यही जीवन जागृति और अनुभव क्रम है।

अस्तु जीवन विद्या में पारंगत व्यक्ति स्वयं में विश्वास और श्रेष्ठता के प्रति सम्मान के अर्थ में समीचीन है। जीवन विद्या पर आधारित शिक्षा के द्वारा राष्ट्रीय चरित्र में सार्वभौमता समीचीन (होने की पूर्ण संभावना) है इसे चरितार्थ करना ही हमारी प्रतिज्ञा है।

शिक्षा संस्थाओं में जीवन विद्या का क्रियान्वयन तीन चरणों में सम्पन्न होता है :-

प्रथमचरण

अस्तित्व में जीवन, जीवनी क्रम, जीवन जागृति संबंधी संपूर्ण अवधारणा अर्थात् जीवन दर्शन को चिंतनाभ्यासपूर्वक हृदयंगम करना।

द्वितीय चरण

जीवन की महिमा प्रक्रिया व स्वरूप के प्रति जागृति और प्रामाणिकता पूर्वक पारंगत होना तथा व्यवहार में चरितार्थ करना।

तृतीय चरण

जीवन विद्या के प्रबोधनपूर्वक चिंतन में आरूढ़ होने तथा व्यवहाराभ्यासपूर्वक प्रामाणिक होने का मूल्यांकन करना।

व्यवहार - संबंधों व मूल्यों की पहचान + निर्वाह = समाज + सामाजिकता + समाज व्यवस्था = वर्तमान में

विश्वास

1. मानव व्यवहार रूप - नियम न्याय = समाधान व प्रामाणिकतापूर्ण कार्य व्यवहार विन्यास ही है।

यही मानव कुल के संपूर्ण आयाम, कोण, दिशा परिप्रेक्ष्य में, से, के लिए सत्य, शुभ, सुन्दर गति व स्थिति है।

2. विश्वास स्वयं मनुष्य के निर्भ्रम अथवा स्वभाव गति के नामकरण का द्योतक है। मनुष्य में निर्भ्रमता, प्रामाणिकतापूर्ण अभिव्यक्ति, समाधानपूर्ण सम्प्रेषणा और न्यायपूर्ण कार्य व्यवहार व आचरण का प्रकाशन है।
3. इकाई तात्विक रूप में परमाणु है क्योंकि परमाणु में निश्चित व्यवस्था प्रकाशमान है फलस्वरूप ही भौतिक रासायनिक अणु व उसमें संगठित पिण्ड और रचित रचना के रूप में अनेक इकाईयाँ स्पष्ट है।
4. भौतिक रासायनिक संगठित पिण्ड ही ग्रह गोलों के रूप में और मृद-पाषाण मणि धातु के रूप में वर्तमान है। रासायनिक अणुओं से रचित रचनायें वनस्पति, जीव व मनुष्य शरीर के रूप में इस धरती पर अपने त्व सहित व्यवस्था के रूप में वर्तमान जीवन का वैभव जीवन्तता के रूप में वर्तमान हैं। जीवन्तता व संचेतना का प्रमाण प्रत्येक मनुष्य है।
5. मनुष्येतर प्रकृति सर्वाधिक यांत्रिक प्रकाशन है क्योंकि पदार्थावस्था श्रम गति परिणाम व प्राणावस्था की संपूर्ण रचनायें विरचनाशीलता के रूप में स्पष्ट है।
6. मनुष्येतर कर्म करते समय और उसका फल परिणाम के समय नियंत्रित है जबकि मानव-कर्म करते समय स्वतंत्र एवं उसका फल भोगते समय परतंत्र अथवा नियन्त्रित होता है मनुष्य में ही कर्म स्वतंत्रता व कल्पनाशीलता वर्तमान होना पाया जाता है। इन तथ्यों के आधार पर मानव का सहअस्तित्वपूर्ण समग्र व्यवस्था में भागीदार होना सहज समीचीन है क्योंकि सहअस्तित्व में ही विश्वास प्रमाणित होता है अस्तु व्यवहार का साम्य सूत्र ही विश्वास एवं उसकी व्याख्या ही सहअस्तित्व है।

आचरण - स्वभाव गति की अभिव्यक्ति + संप्रेषणा + प्रकाशन

1. मनुष्य मानवीयतापूर्ण आचरण की स्थिति में स्वधन, स्वनारी/स्वपुरुष व दयापूर्ण कार्यव्यवहार सेवा कर्तव्य दायित्व, सूत्र व व्याख्या के रूप में ही प्रमाणित होता है।
2. स्वधन - प्रतिफल, पारितोषिक व पुरस्कार के रूप में प्राप्त धन स्वधन के रूप में वर्तमान है।

3. स्वनारी/स्वपुरुष – विवाहपूर्वक प्राप्त दाम्पत्य संबंध होना व्यवस्था क्रम में पाया जाता है। मानव परम्परा में स्त्री व पुरुष की समानता नियति क्रम में प्रमाणित है।
4. दया - जीने देने के क्रम में, जीने की क्रिया के रूप में स्पष्ट होती है। यही वात्सल्य जैसे मूल्य का स्रोत है। यह विशेषकर अविकसित के विकास में सहायक होने के रूप में प्रमाणित है। किसी व्यक्ति के पात्रतानुरूप वस्तु न होने की स्थिति में उसे सुलभ कराने के रूप में दया प्रमाणित व परिभाषित है।
5. प्रत्येक मनुष्य का मानवीयतापूर्ण कार्य, शिक्षा, शिक्षण संस्कार, उत्पादन विनिमय सेवा कर्तव्य व दायित्व के रूप में स्पष्टतया प्रमाणित होता है। मानव शिक्षा संस्कार व शिक्षण कार्य को व्यवहार में सामाजिक व्यवसाय में स्वावलम्बन के अर्थ में, उत्पादन कार्य को समृद्धि के अर्थ में, सेवा कार्य को प्रतिफल दायित्व व कर्तव्य के अर्थ में करना निरीक्षण, परीक्षण व सर्वेक्षणपूर्वक प्रमाणित होता है।
6. मानव की स्वभाव गति नियति सहज रूप में मानवत्व ही है। मानव कुल में सर्वाधिक आवेश भ्रम मूलक होना पाया जाता है। भ्रम का कारण अथवा कारक तत्व शरीर को जीवन मान लेना ही है। फलस्वरूप संपूर्ण प्रलोभन व भय से प्रताड़ित होना या कुंठित होना पाया जाता है जिसमें से प्रलोभनात्मक आवेश मनुष्य में सम्मोहन के अर्थ में स्पष्ट है। संपूर्ण भयात्मक आवेश-विरोध द्रोह-विद्रोह के रूप में पीड़ा के स्वरूप में स्पष्ट है।

मनुष्य ही इस धरती पर कर्म स्वतंत्र व कल्पनाशील है। इसी सत्यतावश मानव मानवत्व सहित व्यवस्था के रूप में कार्य व्यवहार करता है। भ्रमवश मनुष्येतर प्रकृति के सदृश्य कार्य व्यवहार करने की स्थिति में अव्यवस्था की पीड़ा से पीड़ित होता है यही मानवीयता, अमानवीयता आचरण प्रधान रेखा है। मनुष्य मानवीयतापूर्ण पद्धति प्रणाली व नीति में पारंगत होना जीवन सहज अधिकार है इसमें संस्कारभूत व प्रमाणभूत होना ही मानवीयता व सामाजिकता का तात्पर्य है। यही जीवन विद्या मूलक शिक्षा की सफलता है असफल होना ही अमानवीयता है। मानवत्व ही नियति सहज नियामन सूत्र है।

जीवन विद्या मूलक शिक्षा संस्कारपूर्वक मनुष्य का आचरण सार्वभौम होता है। मानवीयतापूर्ण आचरण सूत्र व व्याख्या राष्ट्रीयता का आधार स्वरूप व महिमा है। इसे सर्व-सुलभ होने के फलस्वरूप में स्वराज्य व स्वतंत्रता रूपी वैभव नियति (विकास) सहज रूप में प्रमाणित होता है, मानव परम्परा में मानवीयतापूर्ण आचरण ही व्यक्ति में व्यक्तित्व; परिवार में सच्चरित्र, समाधान व समृद्धि; मानव समाज में समाधान समृद्धि, अभय व सह-अस्तित्व; राज्य व्यवस्था में स्वराज्य, स्वतंत्रता; संविधान में मानवीय आचार संहिता; उत्पादन, विनिमय, उपयोग में आवर्तनशीलता है। इस प्रकार जीवन विद्या की व्यावहारिक महिमा स्पष्ट होती है क्योंकि जीवन दृष्टा पद में होने की स्थिति में ही सभी आयामों में सौभाग्योदय समीचीन रहता है।

चिन्तन - विवेचना = विवेक = लक्ष्य + मूल्यों की पहचान क्रिया = चित्रण प्रक्रिया = इच्छा = निर्वाह क्रम में परावर्तन

क्रिया = विज्ञान सम्मत विवेक + विवेक सम्मत विज्ञानपूर्ण कार्य, व्यवहार, विचार, आचरण, उत्पादन,
विनिमय व विन्यास

1. चिंतनाभ्यास जीवनगत कार्य रूप है। यह क्रिया नियति (विकास) क्रम में प्रज्ञा प्रखरता क्रम प्रक्रिया है।

जीवन में कार्यरत विचार व आशा का दृष्टा पद चिंतन ही होना प्रमाणित होता है। संचेतना ही प्रज्ञा के नाम

से ख्यात है। संचेतना जीवन वैभव रूपी पाँचों अक्षय बल तथा अक्षय शक्तियों का अविभाज्य वर्तमान है।

प्रत्येक मनुष्य में ही जीवन महिमा समान है, यही मानव में समानता का आधार है।

।

2. जीवन महिमा को जानने व मानने की क्रिया में से मुख्य प्रक्रिया चिंतन ही है। प्रत्येक शिक्षक का सहज ही

चिंतनाभ्यास रत होना अनिवार्य स्थिति है। विद्यार्थी को जीवन शिक्षा में पारंगत बनाने के क्रम में स्वयं का

पारंगत रहना स्वाभाविक है। जीवन व जीवन वैभव के प्रति पूर्णतया प्रामाणिक आचरण व व्यवहार

प्रतिष्ठा क्रम में सर्वतोमुखी समाधानपूर्ण चिंतन होना, जीवन सहज प्रक्रिया है। यही जीवन विद्या की

महिमा है।

3. जीवन विद्या स्वयं अनुभवमूलक चिंतन है। फलस्वरूप अनुभवगामी चिंतन प्रक्रिया बोध सुलभ होना

जीवन गुणात्मक विकास व महिमा क्रम है इस सत्यतावश जीवन में चिंतन प्रक्रिया ही निर्भ्रमता अथवा

निर्भ्रमता क्रम का द्योतक है। फलस्वरूप, मानव परम्परा में जीवन तृप्ति व व्यवहार प्रयोजन चिंतनपूर्वक प्रामाणिक होना जीवन सहज सत्य है, इसी सत्यतावश परम्परा में प्रत्येक अध्यापक चिंतनशील

होना, शिक्षा में जीने का सहज प्रमाण है।

4. संपूर्ण शिक्षा शिष्टतापूर्ण दृष्टि की प्रखरता की अभिव्यक्ति और प्रकाशन है। शिष्टता स्वाभाविक रूप में

मानवीयता का संप्रेषण व प्रकाशन ही है। वह श्रेष्ठ संस्कारों की चरितार्थता ही है जो मानव मूल्य, चरित्र

और नैतिकता की अविभाज्य पद्धति, प्रणाली व नीति है। मूल्य, चरित्र व नैतिकता की अभिव्यक्ति शिक्षा

संस्कारानुषंगीय प्रणाली से और मानवीयतापूर्ण संपूर्ण संस्कार-अनुभव मूलक और अनुभवगामी

प्रणाली में प्रमाणित है। क्योंकि संपूर्ण प्रमाण, प्रयोग, व्यवहार अन्ततः अनुभव ही है। व्यवहार व प्रयोग के

मूल में अनुभव का होना पाया जाता है, इसी सत्यतावश मानव परम्परा में अनुभव ही प्रमाण परम होना

स्पष्ट है।

5. जाने हुए को मानना और माने हुए को जानना ही अनुभव क्रिया है जैसे:- अस्तित्व, विकास, जीवन, जीवन

जागृति, भौतिक रासायनिक रचना विरचना, स्थिति सत्य, वस्तु स्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य, संबंधों व मूल्यों

को जानना व मानना अथवा मानना व जानना अनुभूतियाँ हैं। वही पहचानने व निर्वाह करने के रूप में

व्यवहार में प्रमाणित होता है इन सबका प्रधानतः चिंतनपूर्वक ही संप्रेषण होना पाया जाता है, अस्तु

चिंतनशीलता व उसकी अपरिहार्यता स्पष्ट है।

संप्रेषणा - पूर्णता के अर्थ में स्वयंस्फूर्त पद्धति से प्रमाणों सहित बोधगम्य कराने की क्रिया

1. संप्रेषणा तात्त्विक रूप में जीवन का एक नामकरण है।
2. संप्रेषणा का सार्थक रूप प्रामाणिकता सहित अर्थात् अनुभवमूलक प्रणाली एवं पद्धति सहित बोधगम्य कराने और अवधारणाओं को स्थापित कराने की क्रिया ही है।
3. संप्रेषणा-पूर्णता के अर्थ में भाषा, मुद्रा, भाव-भंगिमा, अंगहार की प्रस्तुतियाँ हैं। यही संप्रेषणा का व्यावहारिक स्वरूप है।
4. संप्रेषणा का संपूर्ण प्रयोजन, अनुभवमूलक तथ्यों का विवेक व विज्ञान सम्मत विवेचन व विश्लेषण करना तथा विचारशैलीपूर्वक जीने की कला को स्पष्ट करना ही है।

5. इसी क्रम में शिक्षक में विधिवत अध्ययनपूर्वक प्राप्त संप्रेषणाओं से हुए अवधारणाओं और उनके बोधपूर्ण होने का परीक्षण एक आवश्यकता है। अध्यापक का अपने में प्राप्त अवधारणा व बोधगम्य तथ्यों को अनुभव करते हुये विद्यार्थियों को बोध सुलभ व अवधारणा सुलभ कराना एक मात्र लक्ष्य है। संप्रेषणा के लिए प्रत्येक मनुष्य में अधिकार अथवा क्षमता समान रूप में विद्यमान है ही, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य में जीवन अक्षय बल एवं अक्षय शक्ति का एक रूप होना प्रमाणित है। इसी तथ्य के आधार पर प्राप्त संप्रेषणा से समृद्ध होना और संप्रेषणापूर्वक अन्य को समृद्ध बनाना मानव परम्परा का मौलिक सूत्र है। यही सार्वभौमता, एकता का आधार है। शिक्षण क्रम में प्रथम पाँच वर्षों तक आज्ञापालन पद्धति से, अनुसरण और सहयोग प्रमाण के आधार पर, संप्रेषणाओं की सार्थकता का मूल्यांकन होगा; उसके अनंतर आगे के पाँच वर्षों की अवधि में अनुशासनपूर्वक, अनुसरण, अनुकरण, सहयोग और उपकार प्रमाण के आधार पर संप्रेषणाओं की सार्थकता का मूल्यांकन होगा;

इसके अनन्तर आगे के पाँच वर्षों की अवधि में स्वानुशासन पद्धति से आचरण, व्यवहार व व्यवसाय प्रमाण के आधार पर संप्रेषणाओं की सार्थकता का मूल्यांकन होगा।

दिव्य पथ संस्थान

अमरकंटक (म.प्र.)